गुप्तकालीन साहित्य तथा कला में नृत्यरत नारियाँ

* डॉ0 आयशा फ़ातमी

संक्षिप्तिकाः

भारतीय इतिहास में गुप्तवंश का शासन अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता रहा है। गुप्तकालीन शांति एवं सुव्यवस्था के वातावरण में साहित्य तथा कला को विकसित होने का सुअवसर प्राप्त हुआ। साहित्य और कला में 'नारी' को एक महत्वपूर्ण प्रतिमान के रूप में स्थान मिला है। देवी मूर्तियों के अतिरिक्त लौकिक जीवन की विभिन्न भूमिकाओं का निर्वहन करती हुई स्त्रियों का प्रचुर अंकन हुआ है। इसमें नृत्य एवं संगीत में रत नारियां विशिष्टतया अंकित की गयी हैं जिनमें रूप, भाव तथा भंगिमाओं का सुंदर समन्वय दिखायी देता है। प्रस्तुत शोधपत्र में गुप्तकाल में साहित्य तथा कला दोनों ही क्षेत्रों में 'नृत्यांगना' रूप में नारी चित्रण के उदाहरणों को एकत्रित करने का प्रयास किया गया है।

लौकिक रूप में नारी चित्रण की एक क्रमबद्ध और दीर्घकालिक परम्परा भारतीय कला तथा साहित्य में दिखायी देती है किन्तु गुप्तकाल में यह परम्परा और अधिक विकसित हुई। गुप्तकालीन साहित्यकारों ने मानव जीवन में नारी की महत्वपूर्ण भूमिका को सराहा। जहाँ साहित्य में नारी सौन्दर्य का श्रृंगारिक वर्णन किया गया है, वहीं तत्कालीन कलाकारों द्वारा चित्र तथा मूर्तिकला के माध्यम से नारी सौन्दर्य के विविध रूपों को प्रदर्शित किया गया है। साहित्य में वर्णित रमणियों का अंकन गुप्तकाल में देवप्रासादों, गुहाओं, नाट्यमण्डपों तथा अन्य विशिष्ट स्थलों पर मुख्यतः अलंकरण हेतु किया गया है, जहाँ इनकी स्वाभाविक श्रृंगारिक चेष्टाओं, सहज प्रवृत्तियों, विभिन्न क्रियाकलापों आदि को अतिरिक्त आकर्षण देने हेतु इन्हें नृत्य की भी विभिन्न मुद्राओं में अंकित किया गया है।

---

* सहायक प्रोफेसर–प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, नारी शिक्षा निकेतन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, लखनऊ

गुप्तकाल में नृत्य एवं संगीत कला परम्परा का अभिजात एवं परिष्कृत रूप परिलक्षित होता है। इनकी व्यापकता साहित्य, अभिलेख व कला के विविध साक्ष्यों से मिलती है। 'मृच्छकटिक' के रचयिता, किंचित पूर्ववर्ती शूद्रक (लगभग तीसरी शती ई0)[1] ने तथा रघुवंश, कुमारसंभव, ऋतुसंहार तथा मेघदूत नामक काव्यों एवं मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय, अभिज्ञानशाकुन्तल नामक नाटकों के सृजनकर्ता महाकवि कालिदास (लगभग चौथी–पांचवीं शती ई0)[2] ने अपनी रचनाओं के द्वारा पीढ़ियों के दाय में मिली संगीत एवं नृत्यकला की प्राचीन भारतीय परम्पराओं के संवर्धन का कार्य किया। "इन कृतियों में पग–पग पर संगीत एवं नृत्यकला विषयक उल्लेखों से इनके रचनाकारों की नृत्यकलाभिज्ञता का बोध तो होता ही है, साथ ही तत्कालीन समाज में नाट्यशास्त्रीय परम्परा के व्यापक प्रचार का पता भी चलता है। विभिन्न प्रकार के नृत्यों–सामाजिक तथा देशी नृत्य, वारवनिताओं के नृत्य तथा शिक्षण द्वारा प्राप्त पारम्परिक शास्त्रीय नृत्य का एकल प्रस्तुतियों व समूहनर्तन का, रंग परम्परा में नृत्यकला के अनिवार्य स्थान का, नर्तन के दोनों प्रकारों–नृत्य प्रधान एवं अभिनय प्रधान, नृत्य के दोनों प्रयोगों–सुकुमार लास्य एवं ताण्डव का नृत्यकला से सम्बन्धित व्यक्तियों एवं अन्य सामाजिक प्रथाओं का तथा इन कलाओं के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण का परिचय भी इनमें मिलता है।"[3] नृत्य एवं नाट्य के अधिकृत विद्वान के रूप में मालविका के नृत्यगुरु गणदास की निम्न उक्ति से नाट्य कला के प्रति तत्कालीन समाज के उदात्त दृष्टिकोण की झलक मिलती है–

देवानामिदामामनन्ति मुनयः शान्तं क्रतुं चाक्षुषं
रुद्रेणेदमुमाकृतव्यतिकरे स्वाड़गे विभक्तं द्विधा।
त्रैगुण्योद्भवमत्र लोकचरितं नानारसं दृश्यते
नाट्य भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्।।[4]

अर्थात "नाट्य के प्रति हमारा गौरव मिथ्या नहीं है। ऋषि एवं देवता उसे आदर की दृष्टि से देखते हैं और नेत्रों को तृप्त करने वाला आनन्दमय कर्मकाण्ड....."चाक्षुष यज्ञ मानते हैं। इसी कला के लिये रुद्र ने अपने शरीर

को दो भागों (ताण्डव व लास्य के प्रदर्शन हेतु धारण किया गया शिव का अर्द्धनारीश्वर रूप) में विभक्त किया है। नाट्य तीन लोक वासियों की अभिरुचियों, क्रियाओं एवं भावों का अनुकरण करता है।"[5]

डॉ0 मलैया सुधा के शब्दों में– "नृत्यप्रयोग में कुशल उच्चकोटि की नृत्यांगना, मृच्छकटिक की नायिका गणिका बसंतसेना, विलासी राजा अग्निवर्ण की राजसभा में उपस्थित गन्धर्वविद्या में पारंगत नर्तकियां, रघु के जन्मोत्सव पर आमंत्रित तथा हर्ष की सभा की वारवनिताएं... इत्यादि उल्लेखों से 'गणिकाओं' के लिये संगीत एवं नृत्यादि कलाओं में निपुण होने की अनिवार्यता का ज्ञान होता है। इससे यह भी पता चलता है कि गणिकाओं को समाज के महत्वपूर्ण सदस्य के रूप में समुचित आदर प्राप्त था और विभिन्न उत्सवों पर समागत अतिथियों के मनोविनोदार्थ वारवनिताओं को आमंत्रित किया जाता था।"[6]

गन्धर्व विद्या की सर्वश्रेष्ठ प्रकाशिकाओं तथा इन्द्र की राजसभा की, स्वयं भरतमुनि द्वारा प्रशिक्षित दिव्य नर्तकियों, अप्सराओं तथा यक्षियों[7] का उल्लेख भी ऋषियों तथा कुमारों[8] की तपस्या भंग करने अथवा सार्वभौमिक महत्व के विशिष्ट मंगल अवसरों पर गायन, वादन व नर्तन करने[9] इत्यादि के प्रसंग में अनेक स्थलों पर आया है। अभिज्ञानशाकुंतल तथा विक्रमोर्वशीय की तो नायिकाएं ही क्रमशः मेनका अप्सरा की पुत्री शकुन्तला एवं पुरुरवा के प्रेम में आसक्त उर्वशी नामक अप्सरा है। डॉ0 सुधा कहती हैं– "नृत्याचार्य गणदास के पास नृत्य के नित्य प्रति अभ्यास को जाती हुई सुपात्रा मालविका, सौन्दर्यशालिनी एवं ललित कलाओ में निपुण राजा अज की पत्नीरूपी योग्यतम शिष्या इन्दुमति, अलकापुरी की गरिमामय नर्तन करती हुई नारियां... हर्ष के जन्मोत्सव पर नृत्यरत महल की वृद्ध दासियां, शूद्र दासियां, उच्चकुल की नारियां एवं प्रतिहारियां आदि उल्लेखों से पता चलता है कि केवल वारवनिताएं अथवा पेशेवर नर्तकियां ही नहीं, अपितु राजवंशीय रानियों से लेकर अभिजात एवं निम्न वर्ग की नारियां भी नृत्य एवं संगीत में कुशल थीं एवं ललित कलाओं में गहन रुचि रखती थीं।"[10] कुमारगुप्त एवं

बन्धुवर्मन के मन्दसौर अभिलेख[11] से भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है जिसके अनुसार दशपुर नगर, गन्धर्वों के समान निरन्तर गायन करने वाली नारियों से सज्जित था।

नारद एवं तुम्बरु की समता करने वाले संगीतप्रेमी महान गुप्त सम्राटों ने इन ललित कलाओं को अतिरिक्त प्रोत्साहन दिया। इन्हें संगीत प्रेम, अपने कलाप्रिय मातृकुल लिच्छवि वंश से, वंशगत संस्कारों के रूप में जन्मजात मिला। समुद्रगुप्त[12] एवं कुमारगुप्त[13] प्रथम के वीणांकित सिक्के उनके गहन संगीत प्रेम के निर्दोष साक्ष्य हैं। भितरी स्तम्भलेख[14] समुद्रगुप्त को संगीत की विभिन्न तानों में दक्ष बताता है। निरन्तर युद्धों में लीन रहने वाले कुशल शासक एवं दिग्विजयी गुप्त सम्राटों के इस श्लांघनीय कलाप्रेम का निश्चय ही समाज में उन कलाओं के प्रति एक उदात्त सामाजिक दृष्टिकोण निर्मित करने में महती योगदान रहा होगा।

अपने पात्रों के नृत्यप्रदर्शन के माध्यम से नृत्याचार्य गणदास तथा हरदत्त की श्रेष्ठता का निर्णय करने वाली निर्णायिका बौद्धभिक्षुणी अथवा परिव्राजिका[15] बौद्ध मान्यताओं में क्रान्तिकारी परिवर्तनों का सूचक है। इससे सिद्ध होता है कि बौद्ध साहित्य का संगीत एवं नृत्यकला के प्रति प्रारम्भिक निषेधात्मक दृष्टिकोण शुंगकाल तक आते–आते, इस सीमा तक सकारात्मक हो चुका था कि बौद्ध मतावलम्बी गृहस्थ ही नहीं, बौद्ध भिक्षु व भिक्षुणी भी संगीत व नृत्य की विधिवत शिक्षा ग्रहण करते थे, और उसमें इतने कुशल होते थे कि वे किसी नृत्य स्पर्धा का निर्णायक पद ग्रहण कर सकें। भरहुत व सांची से लेकर अजन्ता एवं बाघ के उल्लासमय संगीत–नृत्य दृश्यों में इसी परिवर्तन की अनुगूंज सुनाई देती है।

वस्तुतः उपर्युक्त सभी कृतियों में प्रत्यक्ष रूप से संगीत–नृत्य विषयक विपुल जानकारी संग्रहीत है। इनके माध्यम से तत्कालीन समाज का जो शब्दचित्र प्रस्तुत किया गया है, उसमें देवी–देवता, अप्सरा, गन्धर्व, गणिकाएं, कुलांगनाएं, राजा रानियां, कुमार–कुमारियां, स्वामिनी–दासियां, बालक–वृद्ध और यहाँ तक कि पशु–पक्षी एवं स्वयं प्रकृति भी नृत्य व संगीत

के मधुर रस में आप्लावित हैं।

वर्तमान में अभी तक ज्ञात कलाविषयक सामग्री के अन्तर्गत गुप्तकालीन कलाकेन्द्रों में पवाया(प्राचीन पद्मावती) देवगढ़, नचनाकुठार, मण्डसौर, अजन्ता तथा बाघ आदि से नृत्य से सम्बन्धित दृश्य प्राप्त हुए हैं। तत्कालीन कलावशेषों में नृत्य एवं संगीतरत नारियों के कुछ प्रमुख दृश्यों का विवरण निम्नवत् है–

1. पवाया, ग्वालियर से प्राप्त एक पाषाण फलक[16] में स्त्रियों के समूह को नृत्य तथा संगीत में मग्न दिखाया गया है। यहां किसी पुरुष सहायक का अंकन नहीं है। सभी प्रकार के नृत्य एवं संगीत से सम्बन्धित कार्य स्त्रियों द्वारा ही सम्पन्न किये जा रहे हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि गुप्तकाल में स्त्रियां, नृत्य एवं संगीत की सभी विधाओं में पारंगत होती थीं। मध्य में अंकित स्त्री अपने हावों–भावों तथा अंगों के सुकोमल प्रयोग से नृत्यकला में प्रवीण प्रतीत होती हैं। दोनों ओर किनारे बैठी स्त्रियां संभवतः वीणा के आकार का कोई वाद्ययन्त्र बजा रही हैं। ऊपर अंकित स्त्रियां भी किसी न किसी प्रकार से संगीत तथा नृत्य के इस कार्यक्रम में अपना सहयोग कर रही हैं। इसमें दाहिनें किनारे की स्त्री संभवतः मृदंग बजा रही है। सभी स्त्रियों के मुखों पर परमसंतोष, गुप्तकालीन की विशिष्ट विशेषता 'कला में देवत्व की भावना' को उजागर करता है।

इस प्रकार गुप्तकालीन कला के सर्वश्रेष्ठ निदर्शनों में से एक, इस सुप्रसिद्ध और बहुचर्चित शिलापट्ट का सौन्दर्यशास्त्रीय[17] महत्व निर्विवाद है, किन्तु इसका सर्वाधिक महत्व नृत्य तथा संगीत की दृष्टि से है। यह एक ऐसा अनूठा वातायन है, जिसके माध्यम से गुप्तकालीन परिष्कृत एवं कलाप्रिय रसिक समाज की समस्त संगीत–नृत्य सम्बन्धी गतिविधियां एक बारगी ही देखी जा सकती हैं। यह गुप्तकालीन कला के ही नहीं, अपितु प्राचीन भारतीय कला

के सर्वश्रेष्ठ उदाहरणों में से एक है, जिसमें सम्पूर्ण कुटप (आर्केस्ट्रा) के साहचर्य में 'मार्गनर्तन' का ऐसा सुंदर मूर्त्यांकन हुआ है। इस शिलापट्ट में भरहुत, सांची, अमरावती व नागार्जुनकोण्ड से प्रवाहमान जीवन्त परम्परा, शिल्पकला व नृत्यकला दोनों की दृष्टि से अपने परिष्कृत रूप में अभिव्यक्त हुई है।

2. अजन्ता की गुफा सं0 26 के एक पाषाण अंकन में स्त्रियां ही सम्पूर्ण दृश्य पर छाई हुई हैं। ऐसा प्रतीत होता है यह स्त्रियां अपने भावों, अंग–विन्यास तथा शारीरिक गतिविधियों से बुद्ध की तपस्या भंग करने का प्रयास कर रही हैं[18]। यद्यपि दृश्य में बुद्ध दिखायी नहीं देते, किन्तु अजन्ता की कला, चूंकि बौद्ध धर्म से सम्बन्धित है और स्त्रियों की भंगिमाएं कामुक प्रतीत होती हैं, तो संभव है यह उसी समय का चित्रण हो जब बुद्ध को लौकिक जीवन में रत करने हेतु विषयसुखों की ओर प्रवृत्त करने का प्रयास किया जा रहा था। इसमें मध्य वाली नर्तकी की भावभंगिमा अत्यन्त कामुक प्रतीत होती है। विशिष्ट शिरोभूषा के साथ इस मूर्ति के शरीर में वस्त्र नहीं दिखाई दे रहा है। कटि में मेखला स्पष्ट है। गले में मोटे–मोटे कण्ठाभूषण दिखाई दे रहे हैं। स्त्री त्रिभंगमुद्रा में खड़ी है, और हाथ नृत्य की मुद्रा में हैं। उसकी सहयोगी स्त्रियां भी अपना अपना कार्य भली भांति कर रही हैं और नारी सौन्दर्य का समग्र रूप प्रस्तुत करने में पूर्ण सफल हैं। बायें किनारे की स्त्री जो मुखाकृति से अत्यन्त सुंदर प्रतीत होती है, मृदंग जैसा कोई वाद्ययन्त्र बजा रही है। सभी स्त्रियों का सौन्दर्य देखते ही बनता है।

3. देवगढ़ (झांसी) से प्राप्त पाषाण के एक मूर्तन में एक नृत्यांगना को चार सहायिकाओं के साथ अंकित किया गया है।[19] ये सहायिकाएं अपने हाथों में कोई वाद्ययन्त्र लिये हैं, जिन्हें वे बजा रही हैं और जिसकी धुन पर मध्य की नायिका नृत्य कर रही हैं। इन स्त्रियों के मुखों तथा होठों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि संभवतः यह

समूहगान कर रही हैं और गाने तथा वाद्य की धुन पर नृत्य किया जा रहा है। सभी की शिरोभूषा विशिष्ट है। कानों में बड़े–बड़े कुण्डल दिखायी देते हैं। गले में हार तथा बा.जुओं में भुजबन्द दिखायी देता है। मध्य की स्त्री स्कर्टनुमा वस्त्र पहने है, जिसमें लहरियादार डिज़ाइन है। दोनों किनारों वाली स्त्रियां धोतीनुमा वस्त्र पहने है,जिनमें से दाहिने किनारे वाली स्त्री के स्थूल शरीर पर (कटिप्रदेश) रेखा बनी हुई है। मध्य नायिका के समीप के दोनो ओर की स्त्रियां संभवतः लहंगेनुमा अथवा पेटीकोट के प्रकार का कोई वस्त्र पहने हैं। शरीर का ऊपरी भाग निर्वस्त्र है। यहां यह ध्यातव्य है कि स्त्रियों के शरीर में वह लोच और कमनीयता नहीं है, जो पवाया के नृत्य समूह में दिखायी देती है। स्त्रियों का शरीर स्थूल है, और सुंदरता के उस मानदण्ड पर खरी नहीं उतरती जिसके लिये गुप्तकलाकार जाना जाता है, परन्तु उनके मुखों की शांति तथा परम संतोष उन्हें, 'कला में देवत्व की भावना' को समन्वित करने में पूर्ण सफल बनाता है।

4. अजन्ता की पहली गुफा की एक समूची भित्ति पर बारह फिट ऊँचा और आठ फिट लम्बा 'मार–विजय' का चित्रांकन है। इस दृश्य में तपस्या में लीन सिद्धार्थ को 'मार' (कामदेव के समान तपस्या भंग करने वाला बौद्ध देवता) की सेना तथा उसकी रूपवती कन्याएं क्षुब्ध और लुब्ध करते हुए अंकित की गयी हैं।[20] इस दृश्य में मार की सेना की वीभत्सता के साथ–साथ इन नृत्य रत कुमारियों का सिद्धार्थ को प्रलोभित करने का निष्फल प्रयास किया जा रहा है। स्त्रियां अपने सम्पूर्ण सौन्दर्य तथा भाव भंगिमाओं के साथ इस चित्र में अंकित की गयी हैं, परन्तु उनका यह कामुक भाव प्रकटीकरण सिद्धार्थ को उनके पथ से विचलित करने में असमर्थ प्रतीत होता है। भारतीय कला में यह चित्र शांतरस की अद्‌भुत एवं सफल अभिव्यक्ति है।

5. बाघ की गुफा सं0 4 से प्राप्त एक दृश्य में स्पष्ट रूप से आकृतियों के दो समूह हैं जो एक के ऊपर एक बनाये गये हैं। परन्तु यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि ये एक ही प्रसंग के चित्र हैं या एक ही दृश्य की घटना है। ऊपर वाले भाग में छः पुरुष आकृतियां हैं जो हवा में उड़ रही हैं और बादलों से आच्छादित हैं। नीचे वाले भाग में केवल पांच सिर शेष बचे हैं जो स्पष्ट रूप से गायिकाओं के चित्र हैं क्योंकि बीच वाली स्त्री के हाथ में वाद्ययंन्त्र है। इन स्त्रियों के केश जूड़े मे बंधे हैं। इस चित्र में नीले रंग से जड़ाऊ आभूषण बनाये गये हैं, यह नीला रंग लेपिसलाजुली है, जिसका प्रयोग अजन्ता के चित्रों में भी किया गया है।[21] यह रंग उस समय फारस से आयात किया जाता था।
6. इसी गुफा के एक अन्य चित्र में स्त्री गायिकाओं के दो दलों को चित्रित किया गया है। यह चित्र बाघ के समस्त चित्रों में अपनी मण्डलाकार व्यवस्था, लय तथा सुंदरता के कारण प्रसिद्ध है। पहले दल में सात स्त्रियां एक अन्य आठवीं नर्तकी को चारों ओर से घेरे खड़ी हैं।[22] नृत्य करने वाली स्त्री पूरी आस्तीन का चुस्त कुर्ता पहने है जो घुटने तक नीचा है। तीन स्त्रियां डण्डे बजा रही हैं। एक मृदंग बजा रही है, और शेष तीन मजीरे(ताल) बजा रही हैं। ये स्त्रियां या तो ऊपरी भाग में आस्तीनदार चोली पहने हैं या ऊर्ध्व भाग में नग्न हैं।

दूसरे दल में एक नर्तकी को घेरे छः स्त्रियां हैं, जो कि गायिकाएं हैं। ये मण्डलाकार रूप में खड़ी हैं। नर्तकी के बाल कंधों पर लहरा रहे हैं। वह चुस्त कुर्ता तथा पतला पाजामा पहने है। शेष छः गायिकाओं में से एक मृदंग बजा रही है, दो छोटे–छोटे मजीरे बजा रही हैं और शेष तीन डण्डे बजा रही हैं। इनकी वेशभूषा पहले वाली गायिकाओं के दल के समान ही है।[23]

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि गुप्तकाल में नृत्य तथा संगीत को अत्यधिक महत्व प्राप्त था। इन कलाओं में विभिन्न वर्ग की नारियां

न केवल रुचि लेती थीं, अपितु पारंगत भी होती थीं।

संदर्भ –

1. मृच्छकटिक का रचनाकाल विवादास्पद है, किन्तु अधिकांश विद्वान इसे तीसरी शती ई0 की रचना मानते हैं।
2. कालिदास के काल निर्धारण के संदर्भ में भी विद्वानों में पर्याप्त मतभेद हैं। विद्वानों का एक वर्ग इन्हें प्रथम शती ई0 में मानता है तथा दूसरा वर्ग लगभग चौथी पॉचवीं शती ई0 का। यहां द्वितीय मत माना गया है।
3. प्राचीन भारत में नृत्य एवं संगीत, डॉ0 मलैया सुधा, पृष्ठ 252
4. मालविकाग्निमित्र, कालिदास, संपा0 पी0 एस0 साणे, एवं जी0 गोंडबोले, बम्बई, 1950, 1.4
5. प्राचीन भारत में नृत्य एवं संगीत, डॉ0 मलैया सुधा, पृष्ठ 252, रघुवंश, कालिदास वाराणसी 1961अघ्याय 19
6. प्राचीन भारत में नृत्य एवं संगीत, डॉ0 मलैया सुधा, पृष्ठ 252
7. प्राचीन भारत में नृत्य एवं संगीत, डॉ0 मलैया सुधा, पृष्ठ 252
8. रघुवंश, वही 12.40; 42
9. कुमारसंभव, कालिदास, काशी हिन्दू वि0 वि0 वाराणसी,,1976, 11.36
10. प्राचीन भारत में नृत्य एवं संगीत, डॉ0 मलैया सुधा, पृष्ठ 253
11. Fleet, corpus Inscriptionum Indicarum-3 pg.81.
12. Altekar, A.S., Catalogue of the Gupta Gold Coins in the Bayana Hoard, Bombay. 1954, pp-56—60,pl. VI, 3--8
13. Altekar A.S., Corpus of Indian coins—The coinage of Gupta Empire. Varanasi, 1957 pl. 14—5.
14. Fleet, वही ……..pg. 53.
15. मालविकाग्निमित्र, वही,.....1.16 तथा 2.8
16. Bhadouria,G.S., Women in Indian Art, Delhi, pl. LXXIX.

17. Anand, Mulkraj, "Soveniers of Madhya Pradesh Sculptures", Marg .Bombay, June 1973. pg. 9.
18. Bhadouria, G. S., वही..... Pl. LXXX
19. Bhadouria, G.S. वही..... Pl. LXXI
20. श्रीवास्तव, अशर्फीलाल भारतीय कला, इलाहाबाद, पृष्ठ 172.
21. वर्मा, अविनाश बहादुर, भारतीय चित्रकला का इतिहास, बरेली 1984, पृष्ठ 74–75.
22. Marshall , The Bagh Caves in the Gwalior State, 1927,pl- D
23. वर्मा, अविनाश बहादुर, वही,, पृष्ठ 74, रेखाचित्र सं0 11.